माधव नागदा

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लघुकथा की प्रासंगिकता और प्रयोजन

आज का समय बड़ा विकट है। मूल्य खंडित हो रहे हैं, परम्पराएं बेमानी हो गईं हैं, रिश्ते बोझ बन गए हैं, नैतिकता नकारी जा रही है, मित्रता सीढ़ी की तरह इस्तेमाल की जा रही है, अहिंसा हँसी की पात्र है, प्रेम दो राहे पर खड़ा है। समाज का अर्थ है जाति, राष्ट्र का अर्थ है कौम, राजनीति का मतलब है कुर्सी, धर्म अर्थात वोट बैंक, पढाई का उद्देश्य है धन, सेवा की मंजिल है सत्ता। अपराधियों का राजनीतिकरण और राजनीति में अपराधी। और भी बहुत कुछ जैसे: बहुराष्ट्रीय कंपनियों का ईस्ट इंडिया कम्पनी में बदलते जाना, अमीर व गरीब के मध्य बढ़ती खाई, मीडिया द्वारा अपसंस्कृति का बेरोकटोक प्रसार, साहित्य, संस्कृति और कला का हाशिए पर धकेला जाना, नारी को वस्तु समझकर उसकी अस्मिता का अवमूल्यन, इंटरनेट का छद्म और अश्लील जाल, भ्रष्टाचार, भूमंडलीकरण, आतंकवाद, जातिवाद और सम्प्रदायवाद के नासूर। इधर विकासवाद के बोझ तले कराहता पर्यावरण। ये सारी चीजें एक सच्चे देशप्रेमी को असहज कर देने के लिओए पर्याप्त हैं।

क्या लघुकथा वर्तमान के इस परिप्रेक्ष्य के साथ तालमेल बैठाकर चल पा रही है ? क्या लघुकथा के औजार इन विसंगतियों को कलात्मक ढंग से उजागर करते हुए इनके पीछे छिपे कारणों की शिनाख्त करने में सक्षम हैं ? क्या लघुकथा अपनी विश्वसनीयता बनाये हुए है ? क्या लघुकथा पाठकों की चेतना को झकझोरने में समर्थ है ? क्या लघुकथा पाठकों में यथास्थिति से ऊपर उठकर बदलाव की कामना जगाती है ? यदि इन सबके प्रश्न हाँ में हैं तो लघुकथा निस्संदेह प्रासंगिक है और प्रयोजनीय भी।

इन दिनों लघुकथाएँ खूब लिखी जा रहीं हैं। पत्र-पत्रिकाओं और सोशल मीडिया पर लघुकथाओं की भरमार है। कई तो ऐसी हैं जिन्हें लघुकथा मानने का बिलकुल ही मन नहीं करता। किसी घटना की ज्यों की त्यों प्रस्तुति, भाषा की सपाटता, अविश्वसनीय स्थितियां, शिल्प का अनगढ़पन, वैचारिक अपरिपक्वता आदि देखकर कोफ़्त होता है। वैसे यह हालत लघुकथा की ही नहीं, अन्य विधाओं की भी है। कविता, कहानी, व्यंग्य आदि विधाओं में भी अराजकता दिखाई देगी। छपास की भूख और लाइक की ललक के कारण यह अफरा-तफरी है। दूसरी ओर अच्छी रचनाएँ भी आ रही हैं जिन्हें पढ़कर पाठकों को पछताना नहीं पड़ता है। दरअसल किसी विधा की परख करते समय उस विधा की हल्की रचनाओं को नज़रअंदाज़ करना होता है। रचना का हल्कापन उसके रचनाकार की कमजोरी है जबकि अच्छापन उस विधा विशेष की ताकत। 'अच्छापन' से तात्पर्य है—शिल्प, संवेदना, कथ्य, भाषा, विचार, दृष्टिकोण की ताजगी, लोकतान्त्रिक मूल्यों का निर्वहन, परिवर्तनकामी चेतना, यथार्थ के तले दबी संभावनाओं की तलाश, अपने समय से जुड़ाव, कोई चुभता सा सवाल या किसी सवाल का जवाब। आज की कई लघुकथाओं में इस अच्छेपन की पहचान की जा सकती है एवं उक्त बिन्दुओं के आलोक में इस विधा की प्रासंगिकता और प्रयोजनीयता को रेखांकित किया जा सकता है। कई लघुकथाएं आगे बढ़कर यथास्थिति का अतिक्रमण करते हुए युग सत्य को गहरी संवेदनशीलता या वाजिब आक्रोश के साथ अभिव्यक्त कर रही हैं। ऐसी लघुकथाएं शिनाख़्त की जा सकती हैं जो परिवर्तनकामी हैं, जनसंघर्ष की पक्षधर हैं, विचारोत्तेजक हैं, सार्थक हैं। चित्रा मुद्गल के अनुसार, 'कलेवर में लघु होने के बावजूद उसका (लघुकथा का) रचनात्मक प्रभाव पाठक के मर्म को गहरे उद्वेलित ही नहीं करता, उसके मानस पर अपना स्थाई प्रभाव भी छोडता है।' वरिष्ठ लघुकथाकार ही नहीं नई पीढ़ी के जेनुइन रचनाकार भी ऐसी लघुकथाएँ रच रहे हैं जिनमें समकालीन परिदृश्य पूरे कलात्मक उत्स के साथ उभरकर सामने आ रहा है।

कहीं मानवीय संवेदनाएं हृदय को छू लेती हैं तो कहीं नैतिक मूल्यों के क्षरण का चित्रण हमें आक्रोश से भर देता है।

मुरलीधर वैष्णव की 'एग्रीमेंट', श्यामसुंदर दीप्ति की 'दीवारें', लक्ष्मी रूपल की 'दूरी' जैसी लघुकथाओं में बुजुर्गों के एकाकीपन का दर्द और बेटों की संवेदनहीनता के विश्वसनीय चित्र उभरकर आते हैं। भूपिंदर सिंह की 'रोटी का टुकड़ा' और रवि पुरोहित की 'रोटी का सवाल' समाज में सदियों से जड़ जमाये बैठे जाति-पांति के भेदभाव पर करारा प्रहार करते हुए हमारे सम्मुख एक जलता हुआ सवाल खड़ा करती हैं कि जाति बड़ी है या इंसानियत। श्यामनारायण श्रीवास्तव की 'स्टेटस', अशोक भाटिया की 'कपों की कहानी', राजश्री हिमांशु की 'ठहाकों की गिरफ्त में' वर्गभेद जनित विसंगतियों पर वक्र दृष्टि डालती है। भ्रूण हत्या की दूषित प्रवृत्ति को लेकर कविता वर्मा की 'धुंए की लकीर' और सविता गुप्ता की 'खड़ग खप्पर धारी' उल्लेखनीय लघुकथाएं हैं। कविता वर्मा की ही 'अहसास' और नीरज सुधांशु की 'हॉकर' में श्रमिकों का दुःख-दर्द उजागर हुआ है। मोहन राजेश की 'एंटीकरप्शन', अंजना अनिल की 'दृष्टिकोण', गोविन्द गौड़ की 'स्पष्टीकरण' जैसी लघुकथाएं भ्रष्टाचार के कारणों का स्पष्टीकरण करती हैं। कमल चोपड़ा 'अनर्थ' में उस सांप्रदायिक मानसिकता की शिनाख्त करते हैं जो दंगे भड़काने के लिए उत्तरदायी है। कमल चोपड़ा की ही 'इतनी दूर' लघुकथा में ग्लोबलमेनिया से पीड़ित ऐसे युवकों की पोल खोली गई है जिन्हें सारी दुनिया का ज्ञान तो एक क्लिक से प्राप्त हो जाता है परन्तु ऐन पड़ोस में रहने वाले अपने पिता की विषम स्थिति का पता नहीं चल पाता। इसी प्रकार बलराम अग्रवाल की 'नागपूजा', बलराम की 'बहू का सवाल', पल्लवी त्रिवेदी की 'पति परमेश्वर', राम पटवा की 'अतिथि कबूतर', चित्रा राणा राघव की 'खेल', लता अग्रवाल की 'रिश्तों का अलाव', मिर्ज़ा हाफिज बेग की 'जबान', रेणुचन्द्रा माथुर की 'बाबूजी का श्राद्ध', डॉ.संध्या तिवारी की 'चप्पल के बहाने', डॉ.वसुधा गाडगिल की 'कैंडल लाइट डिनर', तथा डॉ.विनीता राहुरकर की 'सजा तो अब शुरू हुई है' जैसी लघुकथाएँ आज के परिदृश्य पर सार्थक और विश्वसनीय ढंग से टिप्पणी करती हैं। अमीरों की पक्षधर होती जा रही इस व्यवस्था मे आम आदमी के दुःख-दर्द की अभिव्यक्ति पूरी संवेदनात्मक गहराई के साथ या तो कवि ही कर सकता है या फिर लघुकथाकार। अनवर शमीम की लघुकथा 'और हाथी रो रहा था' आंकड़ों के हुनरबाजों का मुंह चिढ़ाती हुई बताती है कि यदि एक दिन भी हड़ताल हो जाय तो मेहनतकशों की मुफलिसी मुंह बोलने लगती है। मोहल्ले में हाथी आता है। लकदक करते बच्चों को हाथी की सवारी करते देख रमजानी का मुन्नू भी जिद करता है। परंतु अंटी में पैसा कहां। रमजानी मना कर देता है। मना तो कर देता है लेकिन उसे अपने बेटे की उदासी देखी नहीं जाती। वह स्वयं हाथी बन जाता है। उस पर सवार मुन्नू खुश है। इधर 'हाथी' अपनी बेबसी पर रो रहा है। मुफलिसी और महंगाई के इस क्रूरतम समय में यह लघुकथा 'भारत' और 'इंडिया' के अंतर को सशक्त ढंग से उजागर करती है।

श.ल.म.प्रचंड की लघुकथा 'अंतर' गरीब और अमीर के अंतर को बड़े ही तल्ख अंदाज में अभिव्यक्त करती है। प्रचंड इस लघुकथा के माध्यम से कहते हैं कि भरे पेट वाले जहर खाकर मरते हैं जबकि गरीब भूख से। सुरेन्द्र गुप्त की 'रजाई' लघुकथा में जिस गंदी और जर्जर रजाई को घरवाले हाथ भी लगाना पसंद नहीं करते उसे निपटाने के लिए जब नाले के पास रख दिया जाता है तो एक बुढ़िया बड़े चाव से उठाकर ले जाती है, आगामी सर्दियों के लिए ईश्वर का वरदान समझकर।

आज के समय का सबसे त्रासद पहलू यह है कि गरीबी ने बच्चों का बचपन और उनकी मासूमियत छीन ली है (खेलने के दिन:कमल चोपड़ा)।

ये तथा इन जैसी बहुत सी लघुकथाएं समकालीन सामाजिक स्थितियों का बेबाकी से जायजा लेते हुए पाठकों को सोचने के लिए बाध्य करती हैं।

लघुकथा का सफर जारी है और लगातार अच्छी लघुकथाएँ जुड़ती जा रहीं हैं।